राम संदेश

भक्ति, ज्ञान एवं कर्मयोग की आध्यात्मिक पत्रिका

पावन हों शिक्षा संस्कार
शुद्ध आचरण का आधार

काम काज हो या व्यापार
सभी जगह अच्छा व्यवहार

मित्र पड़ोसी घर परिवार
संबंधों में निश्छल प्यार

यदि हो पाएं हो संसार में
होगा सुख शांति प्रसार

वर्ष 61 जनवरी–मार्च 2015 अंक 1

रामाश्रम सत्संग, गाज़ियाबाद

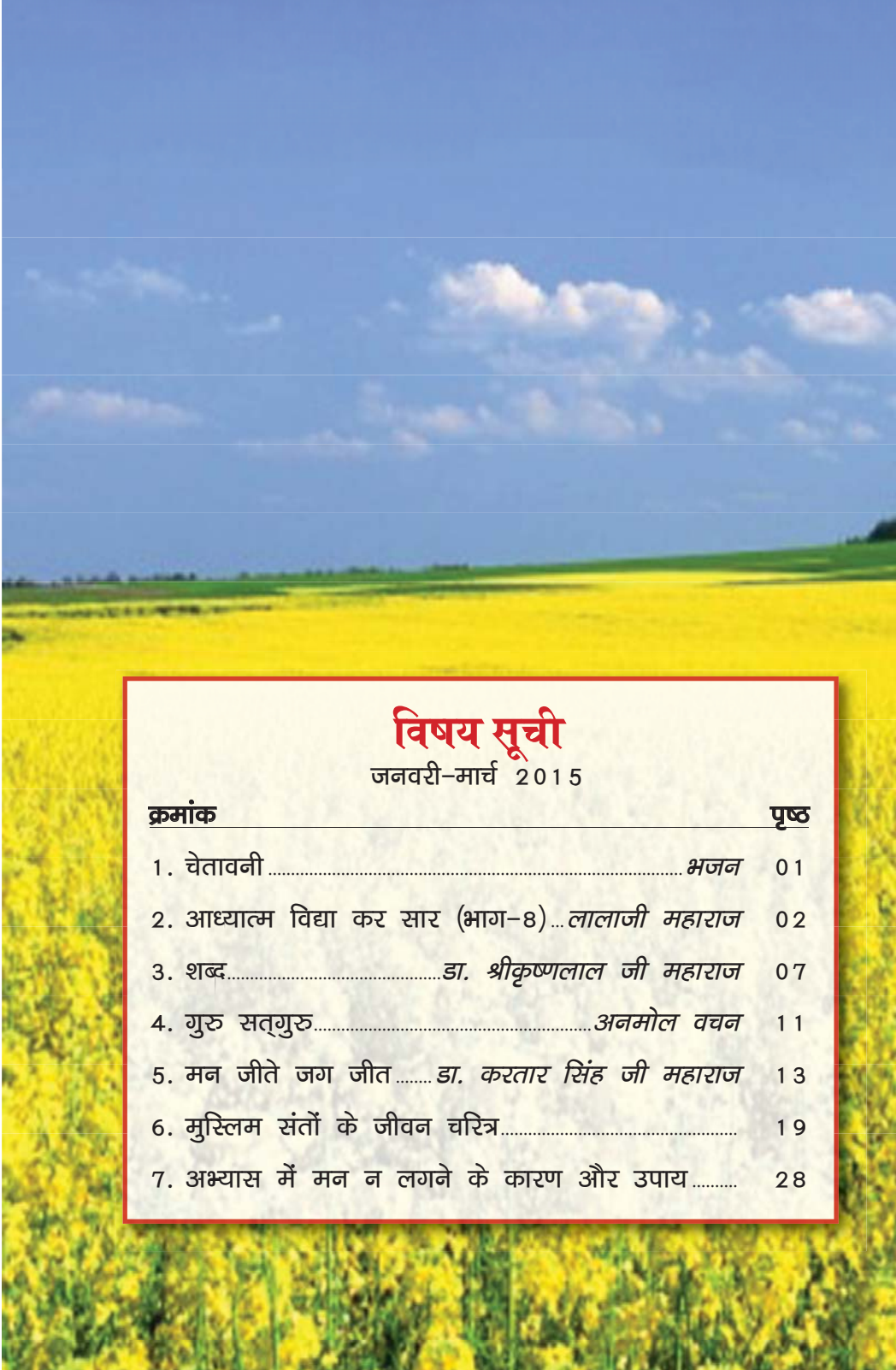

विषय सूची

जनवरी–मार्च 2015

क्रमांक		पृष्ठ
1.	चेतावनी ..... *भजन*	01
2.	आध्यात्म विद्या कर सार (भाग–8) ... *लालाजी महाराज*	02
3.	शब्द ..... *डा. श्रीकृष्णलाल जी महाराज*	07
4.	गुरु सत्गुरु ..... *अनमोल वचन*	11
5.	मन जीते जग जीत ..... *डा. करतार सिंह जी महाराज*	13
6.	मुस्लिम संतों के जीवन चरित्र	19
7.	अभ्यास में मन न लगने के कारण और उपाय	28

राम ॐ संदेश

संस्थापक

ब्रह्मलीन परमसंत डा. श्रीकृष्ण लाल जी महाराज

संरक्षक

ब्रह्मलीन परमसंत डा. करतार सिंह जी

सम्पादक

डा. शक्ति कुमार सक्सेना

(सर्वोच्च आचार्य एवं अध्यक्ष)

वर्ष **61** जनवरी–मार्च **2015** अंक **01**

चेतावनी

सुरत क्यों भूल रही,
अब चेत चलो स्वामी पास।।
हे मनुआं तुम सदा के संगी,
त्यागो जगत की आस।।
हे इंद्रियन तुम भोग दिवानी,
क्यों फँसो काल की फाँस।।
जल्दी से अब मुँख को मोड़ो,
अन्तर अजब विलास।।
जैसी बने तैसी करो ई कमाई,
धर चरनन बिस्वास।।
सत्पुरुष स्वामी दीन दयाला,
दे हैं अगम निवास।।
तब सुख साथ रहो घर अपने,
फिर होय न तन में बास।।

परमसंत महात्मा रामचन्द्र जी महाराज

अध्यात्म विद्या का सार

इरफ़ान (ज्ञान) की व्याख्या

इरफ़ान हक़ीकत (ज्ञान) वास्तव में दिल के पर्दों को चाक करते (फाड़ते) हुए उनके अन्दर अपनी ही असलियत का देखना है और कुछ नहीं।

जागृत और स्वप्न से ऊपर चढ़कर सुषुप्ति की हालत पर ग़ालिब आना ज्ञान है। जबरूत (जागृत) मलकूत और नासूत के ताबक़ात को तै कर जाना इरफ़ान है। साइन्स अच्छी, इल्म अच्छा, अक्ल अच्छी – सभी अच्छे हैं मगर सबसे अच्छा यह ज्ञान है और ज्ञान से मतलब सिर्फ़ इतना है– अपने आपको पहिचानना, अपनी माहियात से वाकिफ़ होना और अपनी ज़ाते–ख़ास का इल्म पा लेना।

ज्ञान की मंजिल में वो पहुँचते हैं जिन्होंने जिस्मी, दिली और अक़्ली तरक्की कर ली है। और बाक़ी तो नाहक़ भ्रम में फँसा देते हैं। और भ्रम इंसान को मार डालता है।

यह ज्ञान दूर की सूझ सुझाता है, मगर इंसान शब्दों के जाल में न फंसे और सिर्फ़ नफ़्स के मतलब पर निगाह रखे वर्ना वह ज्ञानी नहीं, वाचक ज्ञानी कहा जा सकता है। दुनिया में ज्ञानी कम होते हैं – हज़ारों मर्दों में कोई एक ही, सखी का लाल ऐसा निकलता है।

इल्म पढ़कर नौकरी की जाती है, क्यों? रुपया कमाने को। ज्ञान में रुपया नहीं मिलता तो फिर इसमें क्या मिलता है? खुशी, दिल की खुशी, इल्म की खुशी, अपनी हस्ती की खुशी और अपनी ज़ात की खुशी। यह क्या कम है? यही चीज़ सबसे बढ़कर है। यह ज्ञान आत्मा के करीब (निकट) पहुँचाता है। सिर्फ़ आत्मा ही ग़ैरमुतहरिक

(हरकत न करने वाली) और अचल है। सब इसमें गुथे हुए हैं, यह किसी में गुंथा हुआ नहीं है। जिस्म इसका है मगर यह किसी की नहीं। आज़ाद मुतलक़ और बेक़ैदोबन्द (निर्लेप– जो किसी की क़ैद में न हो) यह आत्मा बे–ताल्लुक, बे–लाग और बे–क़ैदोबन्द है। असल में यही सब कुछ है और बाकी कुछ भी नहीं।

एक किस्सा भगवान कृष्ण का याद आ गया। किस्सा मज़ेदार है। एक दफ़ा रुकमिणी जी ने भगवान कृष्ण से प्रार्थना की ''हे प्रभु! अगर आज्ञा हो तो महर्षि दुर्वासा जी के दर्शन कर आऊँ जो यमुना के उस पार ठहरे हुए हैं।'' कृष्ण भगवान ने आज्ञा दे दी। किन्तु इत्तफ़ाक़ से क़िश्ती न थी। रुकमिणी जी ने कुष्ण भगवान से प्रार्थना की कि 'हे प्रभु! किश्ती नहीं है, किस प्रकार यमुना पार जाऊँ? कुष्ण भगवान बोले– ''यमुना से जाकर कहना कि अगर कृष्ण ने कभी मेरे साथ भोग नहीं किया है तो तुम मुझे रास्ता दे दो।'' रुकमिणी जी को ताज्जुब हुआ, दिल में कहने लगीं, ''इनका और मेरा हमेशा ही साथ रहा है और यह कहते हैं कि मैंने कभी भोग नहीं किया है।'' मगर वह चल पड़ीं। यमुना को वह संदेश सुना दिया और उसने रास्ता दे दिया। इधर–उधर पानी और बीच में खुश्की। दुर्वासा मुनि के पास पहुँचीं और पकवान का टोकरा पेश किया। दुर्वासा ने खूब खाया और दुआ दी।

वह चलते समय बोलीं – ''यमुना चढ़ी हुई है, पार कैसे उतरूँगी?'' दुर्वासा ने पूछा 'आई कैसे थीं?' उसने कृष्ण का बताया हुआ मंत्र सुनाया। दुर्वासा हँसे और कहा, ''अच्छा, यमुना से कह देना कि अगर दुर्वासा ने पकवान नहीं खाया हो तो रास्ता दे दो।'' वह और भी हैरान हुई कि अभी इन्होंने सारा पकवान चट कर दिया और कहते हैं, नहीं खाया है। फिर चल पड़ीं और यमुना ने भी उसी तरह रास्ता दे दिया। कृष्ण के पास आकर पूछा, ''भगवन्, इसमें क्या भेद है?'' उन्होंने जवाब दिया, ''कृष्ण और दुर्वासा दोनों ही आत्मा हैं और गोपियाँ इंद्रियाँ हैं। कहने का मतलब है कि सारे काम आत्मा

से मंसूब किये जाते हैं, मगर वह तो सबसे अलग–थलग रहती है।''

यह आत्मा की असलियत है। सब कुछ करती है और कुछ नहीं। इस आत्मा का जलाल (प्रकाश) दुनियाँ में नुमायाँ होता (चमकता) है और तलब और इश्क़ के बाद इसकी समझ आती है। बग़ैर कर्म और उपासना के ज्ञान मुश्किल से होता है।

तलब हो गई, इश्क़ हो गया, यकीन हो गया। तलाश और तलाश की सरगर्मी और दिली ख़्वाहिश की पहिचान किसी क़दर हासिल हुई। अब उसे मिलकर एक रहने की हविस है। हिज्र (विरह) का ज़माना गुज़र चुका है, विसाल (मिलन) की बारी आनी चाहिए। दुनियाँ द्वन्द की हालत है। एक का होना दूसरे का सबूत है। तुम इस वास्ते हो कि हम भी हैं। हम इस वास्ते हैं कि तुम मौजूद हो। अग़र इनमें से एक भी गायब हो जाये तो हम और तुम दोनों बेमानी मादूम (निरर्थक) हो जायेंगे। इसलिए इस द्वन्द की रचना में एक के साथ दूसरा भी हमेशा लगा हुआ है– जैसे भूख व आसूदगी, रात व दिन, रंज व ख़ुशी, बंधन व मोक्ष या ज़ात और सिफ़ात (व्यक्तित्व व गुण)।

अब तक नादान बनकर अपनी नादानी दिखाते आये। दानाई भी आयेगी या नहीं? दो में झगड़े रगड़े हैं। एक में आराम है। जब एक रहेगा तो किससे कहेगा और क्या कहेगा? किसकी सुनेगा और क्या सुनेगा? किसको जानेगा और क्या जानेगा? वहाँ दो नहीं हैं कि एक दूसरे से बोल सकें व एक दूसरे के रंज में शामिल हो सकें। इसलिए एक की ख़्वाहिश थी वह मिल गया, अब क्या रहा? पहिचानने के साथ ही तौहीद की परिक्रमा शुरु हो गई। एक ही है तो एक की पहिचान होने पर तौहीद के दरवाजे पर परिक्रमा शुरु हो गई। शमा (चिराग) पर परवाना (पतंगा) गिरा, जलकर उसी में खाक (भस्म) हो गया। बूँद समुद्र में गिरी और अपनी हस्ती खो बैठी।

यही तौहीद है मगर इसकी समझ लाखों में किसी एक को आती होगी। तसलीस परस्त (तीन को पूजने वाला) कहता है 'परमात्मा है, प्रकृति है, आत्मा है और ये तीनों अनादि है।' दो को मानने वाला कहता है, 'सारी आत्मा असल व नसल के लिहाज से एक है। खुदा को मानने की जरूरत नहीं।' एक को मानने वाला कहता है, 'तुम दोनों की बातें बेमानी हैं। यह क्यों नहीं कहते कि सिर्फ़ खुदा ही है और कुछ नहीं, 'हमाओस्त व हमाअज़ोस्त' मानी, वही सब कुछ है और उसी से सब कुछ है।'

देखा, तीन मुँह तीन बातें। इनमें अपनी अपनी जगह सब सच्चे और अपनी जगह छोड़ने पर झूठे। आगे देखिएः मुवाहिद (एकवादी) लागों में भी तीन तरह के विश्वास करने वाले हैं :–

1. **द्वैताद्वैत** जो मौक़े पर द्वैत और मौक़े पर अद्वैत मानता है।
2. **विशिष्टाद्वैत** जो एक ज़ाते–वाहिद (एक हस्ती) में दो चीज़ें यानी जीव और चेतन मानता है।
3. **अद्वैत**, जो जड़ और चैतन्य को फ़र्जी व ख़्याली बताता है। सिर्फ़ ज़ाते–वाहिद को (एक हस्ती) को ही हक़ (सत्य) समझता है।

इनमें रगड़े झगड़े हुआ करते हैं क्योंकि यह सब असलियत से दूर हैं। बात बनाना तो सीख गये। दलील व हुज्जत (तर्क–वितर्क) हमेशा ज़बान पर रहती है। तौहीद कुछ और है, ये समझे कुछ हैं पर कहते कुछ और हैं। अगर यह खालिस वाहिद (एक को मानने वाले) हों तो इनमें झगड़ा होने की क्या ज़रूरत। बहस मुबाहिस की क्या ज़रूरत थी? क्योंकि तौहीद तक पहुँचते–पहुँचते सारे झगड़े ऐसे ग़ायब हो जाते हैं जैसे सूरज की रौशनी से अंधेरा।

हम तौहीद (ब्रह्मसत्ता के एक होने की धारणा) किसको कहते हैं? दो का मिलकर रहना इस तरह से कि फिर दुई का ख्याल तक दिल में न आने पावे – यह असली तौहीद है।

'मन तो शुदम तो मन शुदी, मन तन शुदम तो जाँ शुदी।
त कसन गोयद बादर्जी, मन दीगरम तौ दीगरी।।'

भावार्थः– मैं तू हो गया और तू मैं हो गया। मैं जिस्म बन गया और तू मेरी जान बन गया ताकि अब कोई यह न कह सके कि मैं और तू दो हैं।

ख़ाविंद बीबी के साथ हमआगोश हो गया (गले मिल गया) दोनों एक हैं। इस वक़्त कोई झगड़ा नहीं, ख़ुशी ही ख़ुशी है। ख़ाविंद बीबी से अलग हो गया, एक से दो हो गये। अब झगड़े शुरु होते हैं। सब मज़ा किरकिरा हो गया। यह रोज़ाना दुनियाँदारी के कारोबार में देखा जाता है।

यह मिसाल तौहीद को समझने में कुछ मददगार होती है। मगर यह भी ख़ालिस तौहीद नहीं है और तौहीद कभी ख़ालिस नहीं होती। एक के साथ दो का झमेला लगा ही रहता है। जब तक यह ख़्याल कि हम आशिक और मुवाहिद (एकवादी) हैं तब तक माशूक (प्रियतम) और दो की हस्ती का ख़्याल रखना असलियत लगती है। जब तक मुवाहिद (एकपने के भाव में) ख़ुद को भुलाकर, तौहीद के ख़्याल तक को भुला न देगा, तब तक तौहीद (ध्येय) की असली मुराद ज़हन में नहीं बैठ सकती और यही सबब है कि जिनको ज़रा भी अच्छी समझ बूझ है, वो तौहीद की डींग नहीं मारते, चुप रहते हैं।

हक़, हक़ है, नाहक़, नाहक़ है। तौहीद में न हक़ है, न नाहक़ है। जो तौहीद की बाँग लगाता रहता है, वह द्वैतवादी है और जो तौहीद का पूजने वाला हो वो बुतपरस्त है। जो इशारा करता है वह ग़ाफ़िल है, क्योंकि तौहीद उसके लिए जो मुवाहिद (एक मानने वाला) है, जमाल (प्रकाश) का पर्दा रखता है। तौहीद बतौर ख़ुद कमाल है जिसकी दीद व शुनीद (देखना व सुनना) महज़ वहम और ख़्याल है।

ज़बाँ को बन्द कर, लब को ख़ामोश कर।
न कुछ जबाँ से कह, होश कर होश कर।।

❐❐❐

(क्रमशः.....अगले अंक में)

प्रवचन गुरुदेवः परमसंत डॉ. श्रीकृष्ण लाल जी महाराज

शब्द

साधारण भाषा में किसी भी लिपि के अक्षरों के मिश्रण जो कि मुँह से बोले जाते हैं, वे शब्द कहलाते हैं। दूसरी तरह से शब्द को अक्षरों का समूह समझ लीजिए। किन्तु संतों की भाषा इसे नहीं मानती। जो लिखा, पढ़ा या बोला जाए वह शब्द नहीं है।

शब्द दो प्रकार के होते हैं। एक वर्णात्मक, दूसरा ध्वन्यात्मक। वर्णात्मक शब्द के चार प्रकार हैं। –

1. परा, 2. पशन्ति, 3. मध्यमा, 4. बैख़री।

अर्थात् एक शब्द वह है जो जिह्वा से बोला जाता है। दूसरा वह है जो धीरे–धीरे कण्ठ से बोला जाता है। जो शब्द हृदय से बोला जाता है (Arterial murmur) उसे मध्यमा कहते हैं। बैख़री वह है जो योगी जन नाभि से हिलोरें उठाते हैं। ये चारों प्रकार के शब्द वर्णात्मक हैं। जिस शब्द का संत जन गुणगान करते हैं वह स्वतः अनुभव की वस्तु है। गुरुनानक साहब कहते हैं –

''ऊँची पदवी ऊँचो, ऊँचा निरमल सबद कमाया।''

अर्थात् यह बहुत ऊँची गति है। जब वक़्त के पूरे सत्गुरु की कृपा हो और अभ्यासी की अपनी कमाई हो, तब शब्द की दौलत मिलती है। उसी शब्द की महिमा गुरु नानक साहब जी इस प्रकार करते हैं–''अक्खी बाझहु देखणा'' यानी इन आँखों से नहीं देखा जा सकता है। वर्णात्मक शब्द तो लिखा जा सकता है। वे फिर कहते हैं – ''विणु काना सुनणा'' अर्थात् वहाँ कान नहीं हैं, जो उसे सुन सकें। ''इहु जीवन मरणा''–जब जीते जी वह मरेगा, नवद्वारों से ऊपर जायेगा तब वहाँ शब्द ध्वनित होता सुनाई देगा। यह ऊँची से ऊँची अवस्था है। इस शब्द में इतना आकर्षण है कि इसको सुनकर सुरत ऊपर खिंची चली जाती है।

संत दादू जी कहते हैं :–

"अनहद नाद गगन गढ़ गूँजा, तब रस खाया अमीं दा।"

अर्थः– जब अन्दर शब्द की गर्जना सुनी तब आत्मा देह को छोड़कर विदेह हो गई। उस शब्द रूपी अमृत की अन्तर में वर्षा हो रही है, जिसका रसास्वादन करके आत्मा की शक्ति और अवर्णनीय आनन्द की प्राप्ति होती है।

चक्रबंधन वंश के महापुरुष संत कहते हैं कि शब्द सीधी सड़क है जो आत्मा को परमात्मा से मिला देती है। जब कृष्ण की बंशी बजती है तो उसकी ध्वनि सुनकर गोपियाँ व्याकुलता से घर के कामकाज छोड़कर कृष्ण के पास खिंची चली जाती थीं, उन्हें देह की सुध नहीं रहती थी। 'कृष्ण' जो आकर्षण करे। वंशी की ध्वनि, आन्तरिक अनहद नाद या ध्वन्यात्मक शब्द कृष्ण के प्रतीक हैं। 'गोपियाँ' यानी इंद्रियाँ। जब अन्तर में शब्द होता है तो इंद्रियाँ शान्त हो जाती हैं और सब तरफ से सिमटकर उस शब्द की तरफ आकर्षित हो जाती हैं। संत कहते हैं कि यह अवस्था तब मिलती है, जब यह जीव मुर्शिद कामिल (वक़्त के पूरे सत्गुरु) से युक्ति लेकर जो 'नाम' वे बतावें उसकी कमाई करके, नवद्वारों से ऊपर जायें। यह जो शब्द की ध्वनि है उसी को 'नाम' कहते हैं।

गुरु या सत्गुरु जिससे आन्तरिक शब्द या 'नाम' की युक्ति प्राप्त होती है, वह कौन है? इसे संत पलटू साहब के शब्दों में समझिये।

"धुन आने जो गगन की सो मेरा गुरुदेव।
सो मेरा गुरुदेव सेवा मैं करिहौं वाकी
शब्द में है गलतान अवस्था ऐसी जाकी।।"

अर्थः– सच्चा गुरु वह है जो शिष्य की सुरत (आत्मा) का योग शब्द के साथ करा दे। जो उन प्रत्येक (Nervous centres) चक्रों पर हो रहा है जिन पर आत्मा उतर कर जगह–जगह ठहरी है। 'तीसरे तिल' से ऊपर के शब्द सूक्ष्म हैं। उन्हीं को पकड़कर जब सुरत ऊपर को चढ़ेगी तब धुरधाम में पहुँचेगी, जहाँ उस शब्द की उस पिण्ड शरीर में पहले गूँज हुई। उस स्थान को संत लोग उस जगह की स्थिति बताते हैं जहाँ खोपड़ी के ऊपर आदमी चोटी रखता है।

प्रत्येक चक्र पर शब्द की ध्वनि अलग–अलग है। कहीं मृदंग की सी, कहीं घंटे की, कहीं वंशी की सी और कहीं वीणा की सी। उसी ध्वनि

की गूँज के अनुसार अलग-अलग पंथों में महापुरुषों ने उन शब्दों के स्थान अनुसार नाम रखें हैं, जैसे कहीं 'ॐ' कहीं 'सोहं' कहीं 'राम', कहीं 'अल्लाह', 'सत्नाम', 'राधास्वामी' इत्यादि। यह सब गूढ़ अनुभव का विषय है, जिसे वही जान सकता है जो 'सुरत शब्द योग' का ऊँचा अभ्यासी है और मुर्शिद-कामिल की सौहबत उठाये हुए है।

साधारण जीवन में कहीं अनजानी, अनदेखी जगह जाना हो तो बहुत कठनाई होती है। लेकिन यदि कोई कह दे कि उस स्थान पर कारखाने का भौंपू बोलता रहता है या अन्य कोई इसी प्रकार की आवाज़ होती है तो फिर वहाँ पहुँचने में सुगमता हो जाती है। इसी प्रकार संत अन्तर का भेद जानते हैं, रास्ता चले हुए होते हैं, उन्हें मालूम है कि कौन सी मंजिल पर कौन सा शब्द हो रहा है। उन मंजिलों और वहाँ के शब्दों का भेद तथा उस रास्ते पर चलने की युक्ति संतों से मालूम करके कोई जिज्ञासु चले तो धुरधाम यानी मालिक के धाम में पहुँचने में सुगमता होती है। इस आन्तरिक शब्द में इतनी चसक, इतना आकर्षण है कि एक बार तल्लीनता से उसे सुन लेने पर वह स्वयं ऊपर को खैंचता है।

अधिकतर संतों ने 'राम' नाम को शब्द का रूप दिया है। उसी राम नाम का सुमिरन अंतर की जिह्वा से, आत्मा से, रोम-रोम से वे निरन्तर करते हैं, उसी में डूबे रहते हैं। इसी स्थिति को दादू जी ने 'शब्द में गलतान' कहा है। इस शब्द की महिमा अनन्त है। जो महापुरुष इस अवस्था को प्राप्त कर चुके हैं, वही गुरु कहलाने लायक हैं, वही रास्ता दिखा सकते हैं। जिस शब्द रूपी अमृत का रसास्वादन वह स्वयं निशि-दिन कर रहे हैं, उसी अमृत का पान वह दूसरों को कराते हैं। अधिकारी कौन है? जिसने संसार और उसके भोग विलासों से मन को हटाकर ईश्वर के चरणों में लगाने का दृढ़ संकल्प कर लिया है। जो संसार की आग में अपने आपको जलता हुआ पाता है और उससे बच निकलने के लिए, अपनी आत्मा के उद्धार के लिए, सच्ची शांति प्राप्त करने के लिए पूर्ण रूप से जागरूक है। जो सबका आसरा छोड़कर संत सत्गुरु की शरणागत हुआ है और दीन होकर विनती करता है, 'हे सत्गुरु!, हे सच्चे बादशाह! मुझे सच्ची

राह दिखाओ जिससे मैं भवसागर पार कर सकूँ। गुरु रामदास जी कहते हैं :–

''कृपा कृपा करि दीन हम मारिंग,
इक बूँद नाम मुख दीजै।''

भावार्थः–'हे वाहे गुरु!, हे सत्गुरु! मैं आपका एक दीन पपीहा हूँ। जिस नाम की आप महिमा करते हैं कृपा करके उसकी एक बूँद मेरे मुख में डाल दीजिए।'

'वाहे गुरु', 'सत्गुरु' इस राम नाम का रंग किसको चढ़ता है?– जिसने अपना मन उसे अर्पण कर दिया है।

''लालनु लालु लालु, रंगनु मन रंगन कउ दीजै।''

यह मन ही बाधा है। यही अंतर का मार्ग रोके हुए है। संत कहते हैं कि यदि तू गहरा रंग चढ़ाना चाहता है, ऐसा रंग जो कभी न उतरे तो मनमत छोड़कर गुरुमत हो जा, अर्थात् जो रास्ता गुरु बतायें उस पर चलकर शब्द को पकड़ ले।

जिसको 'नाम' की दौलत मिल गई, जो संत के कहने पर चला, वह भवसागर से पार हो गया। वह राम–राम जपते–जपते स्वयं 'राम' हो गया। उनके लिए कहा है :–

''राम नाम तुलि अउर न उपमा।
जन नानक किरपा करीजै।।''

हम उन राम के प्यारों को 'राम' ही क्यों न कह दें। जैसे जो बूँद सागर में मिल गयी वह स्वयं सागर हो गयी। इसी तरह हरि का जन हरि में मिल गया अर्थात् एक हो गया।

तरीका क्या है? दुनिया से वैराग और ईश्वर से अनुराग, सत्गुरु की खोज और उनके मिल जाने पर मन के कहने पर न चल कर उनके कहने में चलना, यानी मन उन्हें अर्पण कर देना। जो नाम वे दें, उसका लगन से, तन्मयता से, श्रद्धा, विश्वास और दीनता के साथ अभ्यास करना, चरित्र गठन और सत्संग, यथा लाभ संतोष (राजी–ब–रजा) और सत्गुरु या मालिक के सिवाय किसी और का मोहताज न हो।

गुरुदेव अवश्य कल्याण करेंगे।

●●●●

परमसंत डा. श्रीकृष्ण लाल जी महाराज के अनमोल वचन

गुरु–सत्गुरु

- इन्सानी ज़िन्दगी का आदर्श यह है कि अपने आपको पहचाने कि मैं क्या हूँ। ईश्वर को पहचाने और उसमें अपनी हस्ती लय कर दें। जो इस आदर्श का रास्ता दिखावे वही सच्चा गुरु है। जो इस आदर्श की प्राप्ति करना चाहता है वही सच्चा भक्त है। जब ऐसा शिष्य हो और ऐसा गुरु हो तभी सच्चे लक्ष्य की प्राप्ति मुमकिन है।
- ख़्याल से ही हम भ्रांति में फंसे हैं और ख़्याल से ही छूटेंगे। यह सारी दुनियाँ ख़्याल से बनी है और ख़्याल से ही छूटेगी भी। इसलिए सत्गुरु का ख़्याल बाँधकर इन सभी साँसारिक वा. सनाओं तथा भोगों को काटते जाओ। यही सबसे नज़दीक रास्ता ईश्वर को पाने का है।
- यदि किसी सन्त के पास बैठने पर आपकी कमियाँ आपके समक्ष उभर आयें, अपनी कमज़ोरियों की जानकारी मिलने लगे और उन्हें दूर करने की भावना को उभार मिले, ईश्वर सम्बन्धी विभिन्न जिज्ञासाएँ जाग्रत होने लगें, मन में अनेक सत्–सम्बन्धी भावनाओं को उत्साह मिलने लगे, तो बस इससे आप यह अनुमान कर सकेंगे कि यहाँ पर आपको शान्ति मिल सकती है। अब कुछ दिन आप उनका सर्तकता से सत्संग करिए। यदि आपका हिस्सा उन सन्त के पास हुआ तो वे भी आपकी ओर आकर्षित होंगे और फिर सम्भवतः आपको भटकना नहीं पड़ेगा। यदि किसी सन्त से आपका नाता जुड़ गया है, तो यह भी सत्य है कि संकट ग्रस्त परिस्थितियों में गुरु से सहायता मिलती है। आगे प्रगति होने पर ऊपरी लोकों में भी गुरु के दिव्य दर्शन होते हैं और उसके विदेह होने पर भी मार्ग दर्शन मिलता रहता है।
- सन्त के चारों ओर का वातावरण आध्यात्मिकता से भरपूर रहता है। किसको कितना लाभ होता है यह जिज्ञासु एवं भक्त की

ग्रहण शक्ति पर निर्भर करता है। परन्तु यह निश्च्यात्मक तथ्य है कि बग़ैर गुरु के ईश्वर का प्रेम नहीं मिल सकता। सत् तक तो कोई भी व्यक्ति अपने आपको ले जा सकता है।

- सत्गुरु वह है जो तीन चीज़ों से अलग हो – कामिनी, कंचन और यश। ईश्वर का पूर्ण भक्त हो, सिवाय ईश्वर की बात के दूसरी बात न करे, उसे आपसे कोई ग़रज़ न हो, उसके पास बैठने से मन शान्त हो, उसकी कथनी और करनी एक जैसी हो और सिवाय दूसरों की भलाई के और कुछ न चाहता हो।
- जिस गुरु के ध्यान के साथ–साथ जीवन में एक बार भी आपको प्रकाश नज़र आया हो तो समझ लीजिए कि वह सचखण्ड तक पहुँचा हुआ है।
- गुरु का स्थूल शरीर गुरु नहीं है, ईश्वर उस स्थूल शरीर के द्वारा प्रकट हो रहा है। उसमें अपने आपको लय कर दो। जब सम्पूर्ण लय हो जाओगे तो अपने आपको पहचान जाओगे कि तुम कौन हो।
- एक ग़लतफ़हमी (भ्रम) आम तौर पर यह फैली हुई है कि पहले गुरु के चोला छोड़ने पर दूसरे गुरु का ध्यान करना चाहिए और पिछले गुरु से कोई वास्ता नहीं रखना चाहिए। जब गुरु उस पवित्र हस्ती का नाम है जो जीते जी ही ईश्वर में लय हो चुका है तो शरीर छोड़ने पर यह कैसे समझ लिया जाये कि वह मौजूद नहीं है। चोला छोड़ने पर आत्मा आज़ादी हासिल करके ईश्वर रूप में हर जगह मौजूद रहती है। इसलिए उसको मरा हुआ समझना ग़लती है। उसके चोला छोड़ने पर उसी का ध्यान करना चाहिए। हाँ, अगर अभी तक तमोगुणी और रजोगुणी मन पर बैठक है या सतोगुणी मन पर बैठक तो है, किन्तु वह स्थायी नहीं है, तो अपने उस बड़े भाई के संरक्षण और आदेशों से सहायता लेते रहना चाहिए जिसको गुरु इस कार्य के लिये नियत कर गया हो, और यदि ऐसा कोई भाई न हो तो किसी दूसरे गुरु से सत्संग करके फ़ायदा उठा सकता है।

⌘⌘⌘

प्रवचनः परमसंत डा. करतार सिंह जी साहब

मन जीते जग जीत

(28 अगस्त 1999)

ईश्वर और हमारे बीच में जो बाधा है, जो चीज हमें ईश्वर के पास जाने नहीं देती, वह है हमारा 'मन'। जितने भी धर्म ग्रंथ लिखे गये हैं, जितना भी साहित्य इस विषय पर मिलता है, सब में एक ही बात कही गई है और वह है इस मन रूपी रावण पर विजय प्राप्त करना।

मन जब तक निर्मल नहीं होगा तब तक ईश्वर की प्राप्ति नहीं हो सकती। गुरु महाराज का आदेश था कि प्रत्येक सत्संगी अपने मन को देखे। प्रतिदिन या फिर सप्ताह में एक बार और अगर यह भी न हो सके तो, कम से कम माह में एक बार अवश्य अपने मन को देखना चाहिए, कि मेरा मन क्या कर रहा है? ईश्वर तो सर्वव्यापक है, मेरे भीतर भी है और बाहर भी है। फिर ऐसी क्या चीज़ है जो अनुभूति नहीं होने देती। बड़े–बड़े विद्वान, नेताजन यहाँ तक की संत जन भी दीनता से कह देते हैं कि 'आयु खत्म होने वाली है परन्तु ईश्वर के दर्शन नहीं होते।' भाई बहन कहते हैं कि 'पूजा में हमारा मन नहीं लगता'। कोई कहता है कि 'मेरे पिछले संस्कार वैसे के वैसे ही हैं। मेरी वृत्तियों में कोई परिवर्तन नहीं आता है। कोई आत्मिक तत्व की अनुभूति नहीं होती'। आखिर वह बाधा डालने वाला कौन है? वह है हमारा मन।

मन तीन गुणों में फँसा रहता है– तम, रज और सत्। हम में से अधिकांश लोग रज में फँसे रहते हैं। जितना अधिक व्यक्ति पढ़ा लिखा होता है उसमें अहंकार व तामसिकता उतनी ही अधिक होती है। सरल व्यक्ति में उतनी तामसिकता नहीं होती, भले ही वह बुद्धि जीवी न हो परन्तु उनमें सरलता होती है। तीन गुणों ने एक दीवार खड़ी कर रखी है। यह दीवार भीतर भी है और बाहर भी है। यह

जो हम गुणों में फँसे हुए हैं, कुछ तमोगुण में फँसे हैं और कुछ रजोगुण में। सतोगुण में बहुत कम व्यक्ति हैं। जब तक इन गुणों में फँसे हुए हैं हमारे अन्दर से अवगुण दूर नहीं होंगे, हमारी आत्मा परमात्मा से नहीं मिलेगी।

हमारा मन इतना मलिन है। इस चित्त पर अतीत के, न जाने कितने जन्मों के संस्कार लगे हुए हैं। एक काला कपड़ा फिर भी किसी केमीकल से साफ किया जा सकता है, परन्तु व्यक्ति का मलीन मन साफ करना अत्यन्त कठिन है।

''मन तू ज्योति स्वरूप है, अपना मूल पहचान।''

हे जीव! तू आत्म स्वरूप है, ज्योति स्वरूप है, अपना मूल पहचान। तू क्या है, उसको पहचान।

हम लोग विशेषकर पढ़े लिखे लोग सूर्योदय होता नहीं कि रेडियो सुनने लगते हैं, समाचार पत्र पढ़ने लगते हैं। भले ही दो चार मिनट पूजा कर लें किन्तु सारे दिन क्या करते हैं? आज हमारे देश की क्या स्थिति है? कोई व्यापारी हो, सरकारी नौकर हो या फिर किसी और व्यवसाय में हो, कोई भी व्यक्ति ईमानदार नहीं मिलेगा। हम बड़े जोर शोर से कहते हैं कि हम सत्संगी हैं किन्तु हमारा व्यवहार सत्संगी जैसा नहीं है। वास्तव में हमारा व्यवहार ही पूजा है। केवल कभी मन को बाहर का कोई दृश्य आदि दिख जाता है तो वह प्रेरणा तो दे सकता है, परन्तु मोक्ष नहीं दे सकता।

पूज्य लालाजी महाराज कहा करते थे– ''एक–एक संस्कार को तोड़ने के लिए भले ही एक जन्म लग जाये, तो भी चिंता मत करो। इन वृत्तियों से, संस्कारों से, आवरणों से, मलिनताओं से दूर होने की कोशिश करो।''

''बहुत जनम बीते माधव, यह जनम तुम्हारे लेखे।''

''कई जन्म हो गये हैं, मैं कोशिश कर रहा हूँ कि आप जैसा बन जाऊँ। पूर्णरूपेण अहंकार मुक्त हो जाऊँ। हे प्रभु! आपके चरणों में हूँ, आप कृपा कीजिए।''

पूज्य लालाजी महाराज फरमाते हैं कि ''त्रुटियों से मुक्त होना आसान काम नहीं है, हो सकता है पूरा जीवन ही त्रुटियों से मुक्त

होने में लग जाये''। हम भाग्यवान होंगे अगर हम एक बुराई से एक जन्म में मुक्त हो जायें। प्रयास करते रहें, इसी तरह धीरे-धीरे भीतर की मलीनता को धोते चलें।

गुरुनानक जी कहते हैं –

''कहु नानक नाहिं कोउ गुन मोहि माहीं, राख लेउ सरनाई''

पत्थर की दीवार टूट सकती है, धातु की दीवार भी टूट सकती है, परन्तु इस चित्त की दीवार लाखों करोड़ों में से किसी एक की ही टूटती है। चित्त की दीवार को तोड़ने का नाम ही साधना है। साधना हम करते ही नहीं। जब तक हमारा स्वभाव निर्मल नहीं होगा, हम अपने अवगुणों से मुक्त नहीं होंगे, तब तक ईश्वर की समीपता प्राप्त नहीं होगी। यह बड़ा गंभीर विषय है। हममें गंभीरता नहीं है। हम सब सुबह शाम अच्छे कपड़े पहन लेते हैं और थोड़ी बहुत पूजा कर लेते हैं। शीशे में अपने मुख को देखते हैं और प्रसन्न होते हैं। परन्तु कोई भी अपने चित्त को देखता ही नहीं।

हमारे यहाँ की मुख्य साधना है स्वनिरीक्षण। गुरु कृपा होती है उससे कुछ लाभ होता है, परन्तु यदि हम रोज़ अपने अन्दर गंदगी डालते रहेंगे तो गुरु क्या करेगा। यह अंबार और बढ़ता चला जायेगा।

जो बातें हम सब करते हैं, उन पर ग़ौर करें तो पायेंगे कि हर व्यक्ति '...मैं' '...मैं' करता रहता है। बुरा न मानें ये 'मैं' प्रतीक है अहंकार का। मैं जो कुछ बोल रहा हूँ वह भी अहंकार का रूप है। अधिक बोलना अच्छा नहीं समझा जाता। चाहे सत्संग में हों या सत्संग के बाहर। परन्तु आजकल बड़े बड़े शहरों में व्यक्ति इतना बँधा हुआ है कि उसे अपने दोषों को देखने का, स्वनिरीक्षण करने का समय ही नहीं मिलता।

पूज्य लालाजी महाराज का आदेश था कि स्वनिरीक्षण करके एक कागज़ पर अपनी कमियों या त्रुटियों को लिख लें। एक-एक को लें और उसे त्यागने की कोशिश करें। यह मत समझिये कि एक दम से सबसे निवृत्त हो जायेंगे। ऐसा न कोई हुआ है, न आप हो सकेंगे और न मैं ही हो सकूँगा। बाक़ी जो कुछ हो रहा है उसे होने

दें, उसकी कोई चिंता न करें, परन्तु अपने पर चौबीस घंटे निगाह रखें। उन्होंने यह भी फ़रमाया कि औरों के यहाँ तपस्या करते हैं, जैसे अग्नि के पास बैठ जाना या अन्य तरीके से शरीर को कष्ट देना, किन्तु हमारे यहाँ की साधना इससे भिन्न है।

किसी को कह दो कि कि 'आप में यह दोष है' तो उसको आग लग जाती है, क्रोधित हो जाते हैं और वातावरण इतना खराब कर देते हैं कि जीना मुश्किल हो जाता है। हमें प्रतिक्रिया नहीं करनी चाहिए। प्रतिक्रिया जब करनी हो तो अपनी करो, दूसरों की मत करो। अपने दोषों को देखो, दूसरों के दोषों को नहीं। यह भी संभव है कि दोषों को अधिक देखने से हमारे अन्दर हीन भावना आ जाये, इसलिए अपनी कमियों को गुरु से कह देना चाहिए। परन्तु हममें हिम्मत नहीं है। हमें ईश्वर से प्रार्थना करनी चाहिए 'हे प्रभु! हमसे तो कुछ नहीं होता, आप बताइए कि हमारी कौन सी कमज़ोरी है, किस कमज़ोरी को दूर करने की कोशिश करें। महापुरुषों ने दीनता पर ज़ोर दिया है। प्रभु को भी दीनानाथ कहा गया है। जब हम सच्ची दीनता अपनाते हैं तो वह हमें अपनी शरण में ले लेता है। जब तक सद्गुण नहीं आते तब तक प्रगति नहीं हो सकती।

मैं बार–बार कहता रहता हूँ, किन्तु कोई भी व्यक्ति इसका अभ्यास नहीं करता। गुरुदेव आपको शक्ति दें कि आप इस समस्या को जल्दी समझ सकें। दीनता से कोशिश करें, मनन करें, क्योंकि जब तक अहंकार है, तमोगुण तो रहेंगे ही। यह भी एक अहंकार है कि मैं सत्संगी हूँ, सत्संग में जाया करता हूँ। ऐसा बातों को छुपाना चाहिए। महापुरुष कहते हैं 'हम कौन हैं, जो यह ढिंढोरा पीटते हैं कि हमारे में ये गुण हैं।'

'जेता सागर नीर भरया, तेते अवगुन हमारे।'

महापुरुष कहते हैं जितना सागर में जल है उतने अवगुण मुझमें हैं। यह उन्होंने संसार को संबोधित करके नहीं कहा, उन्होंने अपने लिए कहा। महापुरुषों का यह सद्गुण है कि वे अपने अवगुण ों को बताने में संकोच नहीं करते।

गुण–अवगुण से हमारी वृत्ति बनती है। भोजन से, व्यवहार से

वृत्ति बनती है, संगति से भी वृत्ति बनती है। इन सब पर पाबन्दी लगानी होगी। इसीलिए सभी धर्मों में चाहे मुसलमान हों या हिन्दु, सिक्ख हों या ईसाई, सत्संग पर महत्व दिया गया है। सत् का मतलब है जिसका कभी अन्त न हो और वह परमात्मा है, महापुरुष है, उनका संग करना चाहिए। बर्फ के पास बैठें तो शीतलता प्राप्त होती है और अग्नि के पास उष्णता मिलती है, उसी प्रकार किसी संत के पास बैठने से शान्ति प्राप्त होती है। लोग पूछते हैं कि एक संत और एक साधारण व्यक्ति में क्या अन्तर होता है। आप किसी संत के पास चुपचाप शान्त होकर बैठें, कोई प्रश्न आदि न करें। कुछ बोलने की ज़रूरत नहीं, शरीर को ढीला छोड़ दें। सिर्फ 'ओउम् राम' कहते रहें। तो आप देखेंगे कि आपको शान्ति का अनुभव होगा।

संतों में से ही गुरुजन बनते हैं। गुरु वह होता है जिसे शिष्य बनाने की आज्ञा होती है। सब संतों को शिष्य बनाने की आज्ञा नहीं होती। पर उनका संग किया जा सकता है। उनके भीतर अधिक संवेदनशीलता होती है, वे अपने भीतर की निर्मलता दूसरों को दे सकते हैं। इसका मतलब यह नहीं कि दूसरे लोग विद्वान नहीं हैं या उन्हें कम ज्ञान है। किन्तु पिछले संस्कारोंवश कुछ व्यक्तियों में संवेदनशीलता अधिक होती है। उनसे संवेदनशीलता परावर्तित (Transmit) या वितरित होती है। उनके पास बैठना ही काफी है। उनका प्रवचन आदि सुनना भी सत्संग है। लेकिन वास्तविक सत्संग का अर्थ है उस महापुरुष के पास बैठकर यह देखना कि, कि वह महापुरुष अपना जीवन कैसे व्यतीत करता है। उसके जीवन का धीरे–धीरे अनुसरण करना चाहिए।

यह विषय अत्यन्त गंभीर है। हममें गंभीरता नहीं है। सभी महापुरुषों ने मनन को महत्व दिया है। लोग पाठ पूजा करते हैं, अच्छी बात हैं, परन्तु मनन पर ज़ोर देना चाहिए। महापुरुषों के पास बैठना, उनके उपदेशों का श्रवण करना, घर जाकर उन पर मनन करना, निध्यिासन करना और आगे जाकर विचार करना, गहराई में जाना और वैसे बन जाना। कोई भी धर्म या सम्प्रदाय देख लीजिए सबमें इन चारों बातों पर महत्व दिया गया है।

महापुरुष कहते हैं एक–एक शब्द को ले लो और उसके अर्थ पर मनन करो। जैसे एक शब्द 'सत्य' है। यह कह देना कि 'मैं सत्य बोलता हूँ' काफी नहीं है। सत्य शब्द का अर्थ करते जायेंगे तो मालूम होगा कि 'सत्य' का अर्थ है परमात्मा। आप इस पर मनन करते जायेंगे तो एक क्षण ऐसा आयेगा कि आपको ईश्वर के दर्शन हो जायेंगे।

गुरुदेव आप सब पर कृपा करें। ओउम् शान्ति।

अध्ययन करो, विद्वान बनो

मुनि भारद्वाज के पुत्र यवक्रीत की इच्छा थी कि वह वेदों के विद्वान के रूप में ख्याति अर्जित करें। किंतु उसे न तो धर्मषास्त्रों के अध्ययन में रूचि थी, न वह किसी गुरूकुल में ज्ञान प्राप्त करना चाहता था। यवक्रीत घनघोर तपस्या से प्राप्त वरदान के जरिये अपनी यह इच्छा साकार करना चाहता था। आखिरकार उसकी तपस्या से प्रभावति होकर इंद्र देवता प्रकट हुए। उन्होंने पूछा, 'वत्स, तुम क्या चाहते हो ?' उसने उत्तर दिया, मैं वेद षास्त्रों का विद्वान होना चाहता हूं। किंतु अध्ययन में समय बरबाद नहीं करना चाहता।' इंद्र ने कहा, 'तप की जगह किसी गुरूकुल में अध्ययन करके ही वेदज्ञ बनना संभव है।' पर यवक्रीत तैयार नहीं हुआ और पुनः कठोर तप करने लगा।

एक दिन यवक्रीत गंगा स्नान के लिए पहुंचा। तट पर उसने देखा कि एक वृद्ध चुपचाप मुठ्ठी में रेत भर–भरकर गंगाजी में डाल रहा है। यवक्रीत ने पूछा, बाबा रेत गंगा में क्यों डाल रहे हो ?' वृद्ध का जवाब था 'लोगों को गंगा पार करने में कश्ट होता है। मैं रेत का पुल बनाना चाहता हूं। यवक्रीत उसकी मूर्खता पर हंसकर बोला, 'परिश्रम और युक्ति के बिना भी कहीं पुल बनता है ? केवल रेत डालने से पुल कैसे बनेगा ?' तभी यवक्रीत ने देखा कि वृद्ध की जगह इंद्र देवता खड़े हैं। उन्होंने कहा, 'तुम भी तो बिना अध्ययन के वेदज्ञ बनना चाहते हो। क्या वेद–षास्त्रों के अध्ययन व परिश्रम के बगैर तुम्हारी तवस्या पूरी होगी ?' यवक्रीत की आंखे खुल गई। उसने तप छोड़कर अध्ययन किया और वेदज्ञ बन गया।

प्राचीन मुस्लिम संतों के जीवन चरित्र

'आविस'

तपस्वी 'आविस करणी' महापुरुष मुहम्मद पैग़म्बर के समकालीन थे। वे 'करण' नामक देश के निवासी थे। हज़रत मुहम्मद पैग़म्बर से उनका प्रत्यक्ष मिलाप नहीं हुआ था; तथापि दोनों का पारस्परिक परिचय था और दोनों के चरित्रों में बहुत समानता थी। तपस्वी आविस करणी को एकान्त वास प्रिय था। उनके कुटुम्ब में एक मात्र उनकी वृद्धा, अंधी, धर्मपरायण माता जीवित थीं। आविस–करणी ऊँट चरा कर अपना और अपनी माता का निर्वाह करते थे। हज़रत मुहम्मद को आविस के वैराग्य व धर्म–श्रद्धा पर अपार प्रीति थी। पैग़म्बर साहब ने अपने धर्म–प्रचारक साथी उमर तथा अली को आज्ञा दी कि वे एक बार आविस करणी से मिलकर, उन्हें उनका सलाम कहें और अपने सम्प्रदाय का प्रचार करने के लिये उनसे निवेदन करें।

हज़रत मुहम्मद के अवसान काल उपस्थित होने पर उन्होंने अपने पवित्र वैराग्य–वस्त्र आविस करणी को देने के लिये कहा था। पैग़म्बर के परलोक गमन के पश्चात् उमर ने कुफा शहर में आकर ख़ुदबा (एक प्रकार की प्रभु प्रार्थना) पढ़ने के बाद, एकत्रित समुदाय से पूछा–तुम लोगों में से कोई करण का निवासी है? कुछ लोगों के हाँ कहने पर उमर ने उनसे आविस का हाल चाल पूछा। उन्होंने कहा– हाँ हम लोग आविस को जानते हैं, वह तो उन्मत्त हो रहा है। उन्हीं से उमर को मालूम हुआ कि आविस सरणा के जंगल में ऊँट चराया करते हैं। दिन भर में एक बार सूखी रोटी खाते हैं, गांव में आते भी नहीं हैं, किसी की संगति नहीं करते, सुख दुख की उन्हें चिंता नहीं, जब लोग हँसते है तब वह रोते हैं और जब लोग रोते हैं तब वह हँसते हैं।

यह जान कर उमर और अली उनसे मिलने के लिये जंगल में गए। आविस नमाज़ पढ़ रहे थे। आगन्तुकों को देख कर उन्होंने

नमाज़ समाप्त कर उनका स्वागत किया। परस्पर नमस्कार के बाद आगन्तुकों ने जब उनका नाम पूछा तो उन्होंने अपना नाम 'अबदुल्ला' अर्थात परमात्मा का दास बताया। इस पर उमर ने बताया – ईश्वर के तो हम सभी दास हैं, पर आपका नाम तो आविस है न? हाँ उत्तर मिलने पर उमर ने उनका दाहिना हाथ अपने हाथ में लेकर देखा। उसमें सफेद चिन्ह पड़े हुए थे। इन्ही चिन्हों की पहचान हज़रत पैग़म्बर ने बतलाई थी। महापुरुष के इस हाथ को चूम कर उमर ने विनम्रता पूर्वक पैग़म्बर का सलाम कहकर वैराग्य–वस्त्र उनको भेंट किये, साथ ही उसने अपने सम्प्रदाय को आशीर्वाद देने के पैग़म्बर के आग्रह को सुनाया। जिसके जवाब में साधु–स्वभाव आविस ने कहा – भाई जिस पर स्वयं पैग़म्बर ने इतनी कृपा प्रदर्शित की है, वह और ही कोई व्यक्ति होगा। मैं तो एक तुच्छ प्राणी हूँ और इन वस्त्रों को तो मैं तभी स्वीकार कर सकता हूँ जब समस्त इस्लामी भाई इन्हें दें।

वार्तालाप में उमर ने इस बात पर आश्चर्य प्रगट किया कि उन्होंने पैग़म्बर के एक बार भी दर्शन नहीं किये। आविस से पूछा – आप तो पैग़म्बर के सरवा थे? जिस दिन शत्रुओं ने उनके दाँत तोड़ डाले थे, उसी दिन आपने अपने दाँत भी क्यों नहीं तोड़ डाले? इतना कहना था कि आविस ने अपना दन्तविहीन मुख खोल कर उन्हें दिखाया। और वे फिर बोले – मैंने पैग़म्बर साहब के स्थूल दृष्टि से दर्शन नहीं किये; किन्तु उनके दाँतों की सी ही दशा मैंने अपने दाँतों की की है। मन की दुर्बलता के कारण एक साथ तो नहीं, पर एक–एक करके मैंने भी अपने सब दाँत तोड़ लिये हैं।

पैग़म्बर साहब के प्रति आविस की ऐसी भक्ति देखकर वे दोनों चकित व अपने लिये लज्जित से हो गये। उनको विश्वास हो गया कि इस महापुरुष से वे बहुत कुछ सीख सकते हैं। उन्होंने नि. वेदन किया –''आविस, आप हमारे लिये भी, खुदा से बन्दगी करें'' आविस ने कहा ''विश्वास और प्रेम ये दोनों विभिन्न वस्तुऐं हैं। अकेला विश्वास प्रेम नहीं, तो भी मैं अपनी प्रत्येक प्रार्थना में कहता

हूँ ...ऐ खुदा, तू आस्तिक स्त्री पुरुषों के अपराध क्षमा कर''

तदनन्तर उमर ने आविस से कुछ उपदेश देने का आग्रह किया।

आविस बोले – उमर, तुम प्रभु को जानते हो न?

उमर – हाँ।

आविस–तो अब तुम और कुछ भी न जानो तो कोई हानि नहीं।

उमर – और कोई उपदेश?

आविस – उमर, ईश्वर तुम्हें जानता है?

उमर – हाँ।

आविस – तो कोई अब दूसरा तुम्हें नहीं जाने तो कोई हानि नहीं। उपदेश सुनकर उमर ने उनकी सेवा में नक़द भेंट रखी। आविस ने लौटाते हुये अपनी जेब में से दो पैसे निकालकर उन्हें दिखा कर कहा – ऊँट चरा कर दो पैसे पाये हैं, जब तक ये हैं मुझे और की क्या ज़रूरत? तुम दोनों को यहाँ तक आने में श्रम हुआ, अब तुम जाओ भाई! पर एक दिन फिर मुलाकात होगी – क़यामत के दिन, जिसके बाद फिर शायद ही बिछुड़ना पड़े। अभी तो हम सबको अपनी परलोक यात्रा के लिये साज़–सामान जुटाना है। इतना कह कर उन्होंने दोनों को विदा किया।

इसके बाद एक बार आविस कुफा शहर में आये थे, पर हयान के अतिरिक्त और किसी से नहीं मिले। हयान ने उनसे अपनी भेंट का हाल कहा है ''आविस की गागा सुनकर मैं उनसे मिलने के लिये आतुर हो उठा। कुफा में आकर मैंने उनका पता लगाना शुरू किया। एक दिन मैंने अकस्मात् तपस्वी आविस को रात को नदी में हाथ मुँह धोते देखा। उनके सुने हुये लक्षणों को देखकर मैं उन्हें सहज ही पहचान गया। समीप जाकर मैंने उन्हें प्रणाम किया। मेरी ओर नज़र भर देख कर उन्होंने बदले में नमस्कार किया। आविस

को उस मुफलिस हालत में देख कर स्नेह भाव से मेरी आँखों में आँसू आ गये। यह देख कर आविस भी रो पड़े और बोले ''हरम के पुत्र हयान! खुदा तुम्हें दीर्घायु करे। तुम किस लिये आये हो? किसने तुम्हें मेरा पता बताया?

बिना बताए मेरा और मेरे पिता का नाम जान लेने पर जब मैंने आश्चर्य प्रकट किया तो उन्होंने कहा – ''जिससे कोई बात छिपी नहीं वही मुझे तुम्हारा परिचय दे गया। श्रृद्धा–भक्ति वाली आत्माओं का परस्पर योग अनायास ही हो जाता है''।

मैंने उपदेश के लिये प्रार्थना की तो उन्होंने कहा ''मैंने तो कभी उपदेशक, वक्ता अथवा विचेयक बनने की अभिलाषा नहीं की। मेरा तो काम ही दूसरा है। मैं तुम्हें क्या उपदेश दूँ?''

मैंने कहा– ''कुरान का एक वचन ही सुनायें, आपके मुख से उसे सुन कर मुझे अपार लाभ होगा''।

उन्होंने कहा ''शैतान को छोड़कर खुदा का आश्रय ग्रहण करो'' इतना कहते–कहते उनकी आँखें भर आईं और वे पुनः बोले – ''खुदा ने कहा है – ''मैंने मनुष्यों और देवों को अपनी उपासना के लिये सिरजा है। भू–मण्डल, नभ–मण्डल और उसके बीच सर्व–पदार्थ मैंने विनोद मात्र के लिये नहीं रचे हैं, तो भी बहुत से लोग इस बात का ध्यान नहीं रखते''। इतना बोल कर वे रुक गये, मानो उनसे कोई भयानक अपराध हो गया हो। ''हे परवरदिगार! ऐ सुभान अल्लाह!'' कहकर चिल्ला कर मूर्छित हो गये।

थोड़ी देर बाद स्वस्थ होने पर उन्होंने मेरे वहाँ आने का कारण पूछा। मैंने कहा– ''आपके स्नेह के द्वारा सुख प्राप्त करने के लिये मैं यहाँ आया हूँ''।

आविस बोले ''मैं तो कोई प्रसिद्ध व्यक्ति नहीं, किंतु जो मनुष्य ईश्वर को छोड़ कर दूसरे को स्नेह करता है वह क्या कभी सुखी हो सकता है?''

उपदेश देने के लिये पुनः विनती करने पर उन्होंने बताया ''सोते समय यह समझो मौत सिरहाने खड़ी है और जागते समय मौत को आँखों के सामने खड़ी देखो। छोटे से छोटा अपराध करने में भी ईश्वर से डरो। पाप को तुच्छ समझना ईश्वर को भी तुच्छ समझना है।''

मैं भविष्य में कहाँ रहूँ? पूछने पर उन्होंने बताया – ''शाम देश। उस देश में जीविका निर्वाह की मेरी शंका को सुनकर बोले ''जिस हृदय में उदर–निर्वाह की शंका प्रबल हो, जिसको इस विषय में ईश्वर का भरोसा नहीं, वह व्यक्ति ईश्वर के मार्ग का उपदेश ग्रहण नहीं कर सकता। ऐसे लोगों के भाग्य में तो दुखः ही बदा है। हे हरम के पुत्र, तेरे पिता चल बसे, आदम, हवा, नूह, इब्राहिम, मूसा और दाउद आदि अनेक इस लोक को छोड़ कर चल दिये, महापुरुष पैग़म्बर भी परलोक सिधार गये और मेरा भाई उमर भी मृत्यु को प्राप्त हो गया।'' इसके पश्चात् ''हा, उमर!'' कह कर आविस रोने लगे। मैंने कहा ''प्रभु हम सब पर रहम करें, उमर तो अभी ज़िन्दा है?'' आविस बोले ''...न ...न मुझे अभी ख़ुदा ने उसकी मृत्यु का समाचार भेजा है। भाई हम सभी को मौत की फौज में शामिल होना है, इसलिये खूब सँभल–सँभल कर कदम रखने चाहिए''। इसके बाद मुझे आशीर्वाद दे कर यह उपदेश दिया– ''ईश्वरीय ग्रन्थ की आज्ञा का पालन करना और सत्पुरुषों के मार्ग का अनुसरण करना। एक पल भी मौत को न भूलना। अपने मण्डल में जाकर इसी बात पर उपदेश देना। प्रभु के चाकरों को उपदेश देने में आलस्य न करना''। कुछ ठहर कर फिर बोले ''जाओ, हरम के पुत्र, विदा हो। अब तुम मुझे फिर कभी नहीं देख पाओगे और न मैं तुम्हें। बन्दगी के समय तुम मुझे याद करना, मैं तुम्हें याद करूँगा। तुम इस मार्ग से जाओ, मैं उस मार्ग से जाता हूँ।'' इतना कह कर वे उठ खड़े हुए। मेरी तो प्रबल इच्छा थी कि मैं उनकी संगति का और अधिक लाभ लूँ, पर वे तो एक ओर चल दिये। जाते समय उनकी आँखें भर आईं, मैं भी रोने लगा। जिस मार्ग पर आविस गये, मैं उस मार्ग को एकटक

देखता रहा। थोड़ी देर में वे अदृश्य हो गये, उसके बाद उनका कोई समाचार नहीं मिला।

राबिया कहती है कि एक दिन प्रातःकाल की नमाज़ के समय उसने आविस को देखा था। नमाज़ पूरी करके वे नाम जप में तल्लीन हो गये। दूसरी नमाज़ के समय तक वे नाम–जप करते रहे और तीसरी नमाज़ पढ़कर भी वे नाम जप ही करते रहे। इस प्रकार बिना खान पान और शयन के तीन रात तक वे नमाज़ और नाम जप में तल्लीन रहे। चौथी रात्रि को राबिया ने उन्हें कुछ निढाल देखा, किन्तु थोड़ी देर में तो वे सहसा खड़े हो कर बोले ''हे प्रभु! ये तन्द्रा भरी आँखें और यह भूखा पेट तो बहुत जुल्म करता है, इससे छुटकारा पाने के लिये मैं तेरी शरण में आया हूँ।''

उसके बाद सुनने में आया कि आविस बिना सोये रात भर एक आसन में बैठे नाम जप करते रहते थे। उसी अवस्था में एक दिन किसी ने उनसे प्रश्न किया ''क्यों आविस, उपासना कैसी चल रही है?'' उन्होंने उत्तर दिया – मेरे मन को संतोष हो ऐसी तो नहीं, मैं तो बार बार प्रभु के चरणों में नमस्कार करके कहता हूँ – हे प्रभु, तू सबसे श्रेष्ठ है, ऐसा कहते कहते मुत्यु हो जाये तो कितना उत्तम हो, मेरी तो मनोकामना है कि मैं स्वर्गवासियों की सी उपासना करूँ, किन्तु वैसा न कर सकने के कारण असंतोषी हो रहा हूँ।''

किसी ने आविस से पूछा – ''कोई मनुष्य उपासना में मस्त है या नहीं, यह कैसे जाना जा सकता है? उन्होंने बताया – ''कोड़ों की मार पड़ने पर भी उपासक को मालूम न हो तभी समझना चाहिए कि वह उपासना में पूर्ण रूप से मग्न है।''

किसी दूसरे ने पूछा – आप इस समय क्या सोच रहें हैं? उन्होंने कहा – ''मैं यह सोच रहा हूँ कि आज का प्रातःकाल तो देख लिया, किन्तु मौत शाम तक प्रभु वन्दना का मौका देगी या नहीं? ''

किसी ने पूछा आप कहाँ तक पहुँच गये? वे बोले ''रास्ता बहुत लम्बा है, और मेरी झोली तो खाली है।''

एक दिन उन्हें तीन दिन निराहार बीत गये। रास्ते में जाते समय उन्हें एक मुद्रा पड़ी दिखाई दी। किसी का खोया हुआ धन समझकर उन्होंने उसे छुआ भी नहीं। भूख के मारे वे पास के पेड़ों की छाल चबाने लगे। इतने में मुँह में रोटी दबाये एक कुत्ता वहाँ आया। कुत्ता रोटी उनके आगे छोड़ गया। आविस ने यह समझकर के यह रोटी तो किसी दूसरे की है, उसे भी नहीं छुआ। कुत्ता लौट कर आया, संकेत से उसने उन्हें रोटी खाने का आग्रह किया तब कहीं उन्होंने उस रोटी को स्वीकार किया।

आविस के पड़ोसियों का कहना है कि वे तो आविस को पागल समझते रहे हैं। उपवास के बाद का भी उनका कोई नियम नहीं था। खजूर बेच कर वे अनाज खरीदते और उसे खाते। जो अनाज बच जाता उसे ग़रीबों में बाँट देते। वे फटे पुराने कपड़े पहनते। सबेरे के नमाज़ के समय वे बाहर निकलते और शाम की नमाज़ के समय घर लौटते, लड़के उनके पीछे हो कर 'पागल आया, पागल आया' कह कर उन पर पत्थर फैंकते और वे हँस कर कहते ''भाईयों तुम्हें पत्थर मारने में आनन्द आता हो तो ज़रूर मारो, पर पत्थर छोटे ही मारना, कहीं खून निकल आया तो शरीर की अशुद्धता के कारण नमाज़ पढ़ने से रह जाऊँगा।'' उन्हें शरीर की नहीं, चिंता थी नमाज़ की!

आविस से किसी ने कहा – ''पास के कब्रिस्तान में एक व्यक्ति रहता है जो तीस वर्ष से शव के कपड़ों से काम चलाता और बार बार रोता है।'' आविस ने उससे भेंट की। अस्थि कंकाल बशिष्ट वह व्यक्ति श्मशान में बैठा रो रहा था। आविस ने उससे कहा – ''हे भाई! शमशान का यह निवास और शवों के वस्त्रों का धारण तुम्हें ईश्वर से दूर रखता है। अभी तुम में ऐसी पवित्रता नहीं आई कि इन वस्तुओं की अपवित्रता तुम्हें हानि न पहुँचा सके। इस अवस्था में तो ये वस्तु तुम्हारे और प्रभु–पथ में बाधक ही होंगी। आविस के यह शब्द उस व्यक्ति को सत्य प्रतीत हुए। उसे अपनी अयोग्यता और भूल का ज्ञान हुआ। तत्क्षण वह चीख मार कर क़ब्र पर गिरा और उसके प्राण पखेरू उड़ गये।

आविस के जीवन का अंतिम काल हज़रत अली के साथ बीता था। उसी के साथ धर्म–युद्ध में सम्मिलित होकर उन्होंने प्राण त्याग किया था।

मुसलमानों का एक सम्प्रदाय ''आविसी'' के नाम से प्रसिद्ध है। वे लोग गुरु की आवश्यकता नहीं मानते। क्योंकि स्वयं आविस ने कभी पैग़म्बर साहब के दर्शन नहीं किये थे, तो भी उन्हें प्रभु के संदेश मिलते रहते थे।

उपदेश वचन

- चाहे तुम इस लोक के तो क्या स्वर्गलोक के देवों के समान ही ईश्वर उपासना क्यों न करो, जब तक तुम्हारे मन में श्रद्धा नहीं है, तुम्हारी उपासना व्यर्थ है।
- जिन लोगों को इन तीन वस्तुओं से प्रेम है, उनमें और नरक में ज़्यादा दूरी नहीं है। 1. स्वादिष्ट भोजन 2. सुन्दर वस्त्र, और 3. धनवानों का सहवास।
- जिसे ईश्वर का साक्षात्कार हुआ है, उससे बिना जाना कुछ भी न रहा। जिसने परमात्मा को जान लिया उसने जानने योग्य सब कुछ जान लिया।
- बाहरी एकांत वास्तविक एकांत नहीं। मन में चिंता और शंका का प्रवेश न हो, वही सच्चा एकांत है। ऐसा एकांतवास करने वाला ही सच्चा संग–रहित है। जिस समय दो की भावनाएं जाग्रत होती है तभी शैतान ठगने पाता है।
- मन को सदा वश में रखो। यदि हृदय हाथ में होगा तो उसमें प्रवेश करने को दूसरे को रास्ता ही नहीं मिलेगा।
- जिसे उच्च बनना हो, वह विनम्र बने।
- जो पुरुषार्थ प्राप्त करना चाहे, वह सच्चा बने।
- जिसे गौरव प्राप्त करना हो, वह ईश्वर से डरे।
- जिसे महत्व प्राप्त करना हो, वह धैर्यवान बने।
- शांति के लिये वैरागी बनें।
- सम्पति के लिये पराश्रित बनें।

प्रार्थना

साथ ले लो पिता आगे बढ़ जाऊँगा,
वरना सम्भव है मैं भी फिसल जाऊँगा।

राह चिकनी खड़ी और पथरीली है,
झाड़ी काटों भरी और जहरीली है।
दो सहारा नहीं तो मैं फँस जाऊँगा।। साथ ले लो.....

भोग विषयों की उठती है एक-एक लहर,
मुझको उलझा डुबोने चली हर पहर,
दे दो पतवार वरना न तर पाऊँगा। साथ ले लो.....

दुनियाँ कहती है आ इस तरफ मौज ले,
पर इधर धर्म कहता है दुःख मोल ले,
तुम कहोगे वही मैं कर पाऊँगा। साथ ले लो.....

सत्य कहता हूँ जब-जब मैं भूला तुझे,
पायी दुनियाँ मगर एक न पाया तुझे,
बिन तुम्हारे बता मैं किधर जाऊँगा। साथ ले लो.....

हरणं च परस्वानां परदाराभिमर्शनम्।
सहृदश्रव परित्यागस्त्रयो दोषाः क्षयावहाः।।

अर्थः- दूसरे के धन का हरण, दूसरे की स्त्री का संसर्ग तथा सुहृद-मित्र का परित्याग - ये तीनों ही दोष मनुष्य का नाश करने वाले होते हैं।

बेकैफो सरूर हो गई है दुनिया,
सरमस्त फ़ितूर हो गई है दुनिया।
इस शोर व शराबे के बाइस-ऐ-दिल,
अल्लाह से दूर हो गई है दुनिया।।

अभ्यास में मन न लगने के कारण और उपाय

सामान्य कठिनाई

संत मत के अभ्यासियों को बहुधा यह शिकायत करते सुना गया है कि जो आन्तरिक अभ्यास करने को उन्हें बताया गया है, यदि उसको सत्संग में बैठ कर करें तब तो मन लगता है और यदि उसी अभ्यास को अकेले में बैठकर करें तो मन नहीं लगता और उन्हें अन्तर में कोई ऐसा परिचय नहीं मिलता जैसे प्रकाश दिखाई देना या शब्द सुनाई देना। होता यह है कि बजाय ईश्वर की तरफ ध्यान जाने के मन संसार की बातों को सोचने में उलझ जाता है और सांसारिक बातों का ही ध्यान आने लगता है।

यह बात तो निश्चित है कि अभ्यास के समय यदि संसार के कामों तथा व्यवहार का विचार आयेगा तो उस समय मन और सुरत (attention) का प्रवाह अन्तर्मुखी न होकर उस इन्द्रिय की ओर होगा जिसके द्वारा वह कार्य सम्पन्न होता है। यह इन्द्रियाँ मनुष्य की वृत्तियों को बहिर्मुखी बनाती हैं और उसके ध्यान या सुरत को बाहर की ओर यानी दुनियाँ की तरफ ले जाती हैं। यह भी बात निश्चित है कि मन के द्वारा एक समय में एक ही काम हो सकता है या तो वो अन्तर में घुसकर ईश्वर का चिन्तन करें, प्रकाश रूप का दर्शन करे या शब्द का श्रवण करें। यदि वह संसार की बातों को सोचता है तो फिर उसका बहाव उधर ही को हो जायेगा। जब तक वह ध्यान में लग कर अपनी सुरत के द्वारा ऊपर को चढ़ाई नहीं करता तब तक उसका मेल चैतन्य की उस धार से नहीं होता जो ऊपर यानी परमात्मा से आ रही है और जब तक उस धार से मेल न हो तब तक भजन और ध्यान या अभ्यास में रस कैये आये, कैसे तबियत लगे और अन्दर के परिचय किस प्रकार मिलें ?

अभ्यास और पूजा में बैठते समय सिवाय ईश्वर के ख़्याल के और कोई ख़्याल सामने न हो। यदि कोई संसारी काम या उसका ख़्याल करके अभ्यास करने बैठता है तो उसका मन और सुरत दोनों उस समय उसी संसारी काम या उसके विचार से परिपूर्ण है, उस समय उनका प्रवाह नीचे की ओर हो रहा है और उसी नीचे की ओर (सांसारिक) प्रवाह में वह बहा जा रहा है। ऐसी स्थिति में मन ध्यान में नहीं लगेगा। मन को प्रभु प्रेम के रंग और ईश्वर चिन्तन के गहरे रंग में रंगना चाहिए, तब वह संसार की बातों से हटकर अभ्यास में लगेगा। ऐसी दशा में यह आवश्यक है कि कोई ऐसा भजन, गज़ल या प्रार्थना जिसमें ईश्वर प्रेम या विरह भरा हुआ हो दिल से तन्मय होकर गाये और उसके साथ अपने संसारी विचारों को संसार की ओर प्रवाहित होने से रोककर अर्न्तमुखी बनाये। भक्तिभाव और प्रेम भरे भजन की तान पर मन और सुरत थिरकते हुए अंतर में ऊपर की ओर चढ़ाई करने लगते हैं और इस अभ्यास में कुछ रस और आनन्द मिलने लगता है।

अभ्यास में अनावश्यक आतुरता न करें:

किसी-किसी अभ्यासी का यह हाल है कि जब अभ्यास में बैठते हैं तो वह यह चाहता है कि आन्तरिक चक्रों का जो हाल उसने सन्त मत की पुस्तकों में पढ़ा है उनमें से पहला चक्र अभ्यास में बैठते ही खुल जाय। प्रथम तो यह बिना अधिकार बने सम्भव नहीं है और मान लो कि यदि गुरु कृपा से ऐसा हो भी जाय तो फिर उनकी इच्छा होती है कि उसकी झलक बराबर उनके सामने खड़ी रहे। इसी प्रकार गुरु कृपा से यदि कोई आन्तरिक शब्द उन्हें सुनाई दे चुका है तो उस शब्द को भी वे निरन्तर सुनते रहना चाहते है। किन्तु वह झलक या शब्द उनकी अपनी इख़लाकी कमजोरी (सदाचार की अपूर्णता) के कारण टिकाऊ नहीं रहता। अभ्यासियों को यह मालूम होना चाहिए कि आन्तरिक चक्रों की झलक दिखाई देना या शब्द सुनाई देना कोई साधारण बात नहीं है और उन स्थानों में स्थिति पाना तो बहुत ही कठिन है। जब तक अभ्यास के साथ-साथ

सदाचार में पूर्णता न आ जाये तब तक स्थिरता आना बहुत कठिन है। सबसे आवश्यक बात यह है कि गुरु चरणों में प्रीति और प्रतीति के साथ अभ्यास करता रहे। संतमत में अभ्यास से अभिप्राय यह है कि आत्मा और मन जिनकी ग्रन्थि इस स्थूल यानि पिण्ड शरीर में बंधी हुई है, खुलने लगे, आत्मा मन के फंदे से न्यारी होकर उसकी चाल ब्रह्माण्ड की ओर हो और फिर चढ़ाई करके संतो के देश दयाल देश तक पहुँचे।

अभ्यास करते समय ध्यान में कोई अभ्यासी अपने मन और सुरत को पहले या दूसरे चक्र पर जमावे और कुछ देर के लिये अपनी स्थिति वहीं रखे तो सम्भवतः कोई शब्द न भी सुनाई दे या किसी स्वरूप के दर्शन न भी हो, परन्तु इतना तो अवश्य होगा कि मन में दुनियाँ की तरफ से सिमट कर ऊपर की ओर जो चढ़ाई की, उसका रस ऊपर उसे अवश्य मिलेगा। इसी प्रकार अभ्यास करते–करते जब शब्द सुनाई देने लगेगा और अपने ध्यान को उसमें जोड़ेगा तो धीरे–धीरे उस शब्द के आनन्द और आकर्षण में खिंचा हुआ उस स्थान तक पहुँच जायेगा, जहाँ पर वह शब्द हो रहा है। इस बात के लिये यह आवश्यक है कि जब अभ्यास करने बैठे तो अपने आपको दुनियाँ के सब ख्यालों से अलग कर ले और अपने मन और सुरत को उस स्थान पर जमायें जहाँ से गुरु ने अभ्यास शुरु कराया हो। सन्तमत के जिज्ञासुओं को आन्तरिक अभ्यास के मामले में जल्दी नहीं करनी चाहिए। धैर्य से काम लेकर रास्ता धीरे–धीरे चलना चाहिए। हाँ, लगन में कमी न आने पाये। जिन्हें लगन नहीं होती वे सफल नहीं होते। यदि हम इस काम में एक या दो घंटे नित्य लगाते हैं और शेष सारा समय संसार के कामकाज में व्यतीत करते हैं तो यह विद्या जल्दी कैसे प्राप्त हो सकती है।

सन्त मत का अभ्यास बहुत सरल है, परन्तु मन का बहाव संसार की ओर होने के कारण अभ्यासी इसमें कठिनाई अनुभव करता है। अभ्यासी को चाहिए कि सच्चे मन से अपनी इन्द्रियों को सांसारिक विषयों से हटाये और जो लगन संसार की तरफ लगी है उसे शनैः

शनैः छोड़ता जाय और प्रभु चरणों में जोड़ता जाय। इस काम में सदा सर्तकता के साथ अपने मन की चौकसी करता रहे और यह देखता रहे कि यह क्या–क्या तरंग उठाता है। जो तरंगें संसार तथा विषयों की तरफ ले जाती हैं और जो परमार्थ पथ में बाधक हैं, उन्हें रोके, बढ़ावा न दे और जो तरंगे परमार्थी विचारों को बढावा दें, उन्हें प्रोत्साहन दें।

(शेष अगले अंक में)

●●●

याद रखो

जब कभी कोई तकलीफ़ सर पे आवे, मत घबराओ। तुम्हारा परमपिता परमात्मा खुद तुम्हारा सहायक है और सर्वशक्तिमान तुम्हारे साथ है। यह सब तुम्हारी भलाई के लिए ही है। जब तक नश्तर लगाकर फोड़े का मवाद बाहर न कर दिया जायेगा, तुम तन्दुरुस्त नहीं हो सकते और तुमको चैन नहीं आ सकता। इसी तरह जब तक तकलीफ पाकर पिछले संस्कार पूरे न हो जायेंगे और मन तकलीफ़ उठाकर अपने घाट को नहीं बदलेगा, सच्चा सुख प्राप्त नहीं होगा और आत्मा के ऊपर से माया के पर्दे नहीं हटेंगे। इस तरह जो कुछ भी हो रहा है, तुम्हारी भलाई के लिये ही है। इसलिए उसकी राज़ी में खुश रहने की आदत डालो।

राज़ी हैं हम उसी में जिसमें रज़ा है तेरी।
छोड़िए न हिम्मत, बिसारिए न हरि नाम।
जाही विधि राखे राम, ताही विधि रहिए।

–साभार राम सन्देश, जून 1960

आगामी सत्संग एवं भण्डारे की सूचना

सभी भाई–बहनों को सहर्ष सूचित किया जाता है कि आगामी सत्संग एवं भण्डारे के कार्यक्रम इस प्रकार हैं :–

1. दादा गुरुदेव परमसंत डॉ. श्रीकृष्णलाल जी महाराज की पुण्य तिथि के अवसर पर 18–19 मई, 2015 को 'मुगलसराय' में–
   भण्डारा स्थलः अग्रवाल सेवा संस्थान, जी.टी. रोड, मुगलसराय
   सम्पर्क व्यक्तिगणः
   श्री एस.पी. श्रीवास्तव–09889296601, 09708426414
   श्री घनश्याम जी–9335649536,

2. गुरुदेव परमसंत डॉ. करतार सिंह जी साहब की जन्म जयंती और पुण्य तिथि के अवसर पर 13,14,15 जून 2015 को भण्डारा 'भभुआ', बिहार में –
   भण्डारा स्थलः कुबेर कॉम्पलेक्स होटल का प्रांगण, भभुआ।
   सम्पर्क व्यक्तिगणः
   श्री मुक्तेश्वर पाण्डे–09431680787
   श्री बी.एन. वर्मा–09431844712
   डॉ. दिनेश श्रीवास्तव–07542945148, 09431089538

3. इस वर्ष 'गुरु पूर्णिमा' के शुभ अवसर पर सत्संग का आयोजन, 1 और 2, अगस्त 2015 को 'आरा', बिहार में:–
   भण्डारा स्थलः मैंना सुंदर धर्मशाला, एस माल के बगल में
   सम्पर्क व्यक्तिगणः
   डॉ. आर.सी. वर्मा–09431847267
   श्री भागीरथ पंडित–09661763448
   श्री वी.के. जैन–09334141792

आप सभी भाई–बहन इन शुभ अवसरों पर सादर आमंत्रित हैं। निवेदन है कि वे अपने–अपने केन्द्र के माध्यम से या व्यक्तिगत रूप से अपने आने की सूचना उपरोक्त व्यक्तियों में से किसी एक को कम से कम 15 दिन पहले अवश्य देने की कृपा करें, ताकि ठहरने आदि की व्यवस्था की जा सके।

– मंत्री, रामाश्रम सत्संग, गाज़ियाबाद

बधाई-सन्देश

आप सभी भाई–बहनों को नववर्ष 2015 की बहुत–बहुत बधाई। ईश्वर से प्रार्थना है कि आप सपरिवार सुखी, स्वस्थ और संतुष्ट रहें और ईश्वर प्रेम में बढ़ते उत्साह और आनन्द से दिनोंदिन प्रगति करते रहें।

आपने जो इस अवसर पर मेरे और मेरे परिवार के प्रति शुभकामनायें व्यक्त की हैं, उनके प्रति हम अति आभारी हैं तथा सभी को सप्रेम धन्यवाद देते हैं।

– शक्ति कुमार सक्सेना

राम संदेश के नियम

1. आध्यात्मिक विद्या के गुप्त और अनुभवी रहस्यों तथा सदाचार-शिक्षा को सरल भाषा में जनता तक पहुँचाना हमारी राम सन्देश पत्रिका का मुख्य उद्देश्य है।
2. राम-सन्देश में आत्मिक, नैतिक, सामाजिक तथा आध्यात्मिक उन्नति के लेख ही छपते हैं, राजनैतिक या रोमांचक लेख नहीं। रचनाओं में काट-छाँट करने अथवा छापने या न छापने की स्वतंत्रता सम्पादक को है।
3. राम सन्देश का वर्ष जनवरी में आरम्भ होता है। वार्षिक चन्दा 20 (बीस) रुपये है। एक वर्ष से कम तथा आजीवन ग्राहक नहीं बनाये जाते। चन्दा दशहरा भंडारों में या मैनेजर, राम संदेश को, 9-रामाकृष्णा कॉलोनी, जी. टी. रोड, ग़ाजियाबाद (उ.प्र.) 201009 के पते पर दिसम्बर के अंत तक अवश्य भिजवा दें।
4. राम सन्देश डाक द्वारा नहीं भेजा जाता है। इसका वितरण भंडारों पर ही किया जाता है। कृपया अपनी प्रति लेना न भूलें।

राम संदेश

रजि. ऑफिस

9 – रामाकृष्णा कॉलोनी, जी.टी. रोड,
गाज़ियाबाद – 201009

मुद्रक, प्रकाशक व संपादक : डॉ. शक्ति कुमार सक्सेना

मुद्रण : अंकोर पब्लिशर्स (प्रा.) लिमिटेड, बी-66, सैक्टर-6, नोएडा-201301